सन्ध्या संगीत

धर्मदत्त सिद्धान्तालङ्कार

ओ३म्

सन्ध्या संगीत

अर्थात्

सन्ध्या का भावानुवाद तथा अन्य सन्ध्योपयोगी गीत

लेखक

कविराज धर्मदत्त विद्यालङ्कार सिद्धान्तालङ्कार

आयुर्वेदभूषण आयुर्वेदविशारद प्रोफेसर

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वार

प्रथम बार १०००   सम्वत् १९८१ दयानन्दाब्द १००   मूल्य ।=)

भूमिका

उपासक को मन में यह निश्चय करके कि जिस प्रकार प्रति दिन भोजन, छादन, धनोपार्जन आदि मेरे लिये आवश्यक हैं उसी प्रकार सन्ध्योपासन भी मेरे लिये आवश्यक है और जिस प्रकार व्यायाम के बिना शरीर निर्बल हो जाता है उसी प्रकार सन्ध्योपासन के विना आत्मा भी निर्बल हो जाता है। प्रतिदिन दो वार अथवा न्यून से न्यून एक वार अवश्य एकान्त प्रदेश में सन्ध्या के लिये बैठना चाहिये।

सब से प्रथम विना हाथ पैर या शरीर के किसी अङ्ग के हिलाये एक घण्टे तक पद्मासन में बैठने का अभ्यास करना चाहिये। इससे शरीर पर विजय प्राप्त होती है।

मन की स्थिरता प्राप्त करने के लिये जप-प्राणायाम आदि के अतिरिक्त भगवद्भक्ति या भगवत्प्रेम अत्यावश्यक है। जब कोई अपने किसी दूरवर्ती प्रियतम को स्मरण कर रहा होता है तो उसके शारीरिक अवयव तथा मन स्वयमेव निश्चल हो जाते हैं। इस लिये उपासक को सब से प्रथम भगवान् से प्रेम

को भिक्षा मांगनी चाहिये। दूरवर्ती वस्तुएं भी प्रेम की आकर्षण शक्ति से समीपस्थ होजाती हैं। भगवान् भी प्रेम की आकर्षण शक्ति से समीप आजाते हैं। जैसे जब मनुष्य किसी अपने परम प्रेमी से मिल रहा होता है तो उसे अन्य सब कुछ भूल जाता है उसी प्रकार भगवान के प्रति भी अपने हृदय में परम प्रेम उत्पन्न करके उनके समीपस्थ होना चाहिये। हृदय में भगवद्भक्ति को उत्पन्न करने के लिये यह सोचना चाहिये कि "भगवान् मेरे मित्र पुत्र कलत्र आदि सब से अधिक प्रिय और निकटतम सम्बन्धी हैं वे निस्वार्थ भाव से प्रेम करते, रात दिन मेरी चिन्ता में रहते, मुझे नाना प्रकार की आपत्तियों और कष्टों से बचाते हैं। मुझे उन्हों ने क्या नहीं दिया है स्त्री पुत्र परिवार धन ऐश्वर्य आदि सब कुछ दिया है। वे रात दिन मेरे ऊपर प्रेम की दृष्टि करते हैं परन्तु मैं ऐसा अकृतज्ञ हूं कि २४ घण्टे में एक क्षण भी उनको नहीं मिलता। मैं उसके महान् उपकारों का क्या बदला दे सकता हूं केवल अपना प्रेम दिखा सकता हूं। उनकी अपार प्रेम वृष्टि के बदले में छोटी सी प्रेम पुष्पाञ्जलि उनके चरणों पर चढ़ा सकता हूं। दृढ निश्चय करता हूं कि प्रति दिन न्यून से न्यून एकबार उनके चरणों पर अपने हृदय के द्वारा प्रेम पुष्पाञ्जलि चढ़ाऊंगा"।

जब अन्धकारमय हृदय में प्रेम का दीप जग मगाने लगता है तो अन्धकार में छिपे भगवान् दीखने लगते हैं ज्यों ज्यों दीप की ज्वाला बढ़ती है त्यों त्यों उनका रूप स्पष्ट होने लगता है। साधारण पुरुष को सब कुछ दीखता है पर भगवान् नहीं दीखते। भगवत्प्रेमी को और कुछ भी नहीं दीखता भगवान् ही सर्वत्र रमे दिखाई पड़ते हैं वह अपने चारों तरफ ऊपर नीचे, दांये बांये, आगे पीछे, भगवान् के विश्वव्यापी विश्वरूप या विराट रूप को ही देखता है।

जिस के गुणों को अनेक वार सुना हो उसे न भी देखा हो तो भी मनुष्य उसके रूप की कल्पना करके उसका ध्यान किया करता है उसी प्रकार उपासक ने भगवान् को कभी नहीं देखा परन्तु उसके गुणों का सहस्रों वार कीर्तन सुना है कि वह सम्राटों का सम्राट है, प्रभुओं का महा प्रभु है, हमारा पिता माता, सब कुछ है, सर्वत्र रमा हुआ है, सूर्य चांद आदि सहस्रों लोक लोकान्तरों का अनायास संचालन करने वाला है, सत्यस्वरूप, ज्ञानमय और आनन्दमय है। इसे सुन कर वह उनके एक विराट रूप या विश्व व्यापी विश्वरूप की कल्पना कर लेता है और उसी के ध्यान, दर्शन और चिन्तन में प्रेम से लवलीन हो जाता है।

प्रेम के साथ उसी रुप के चिन्तन में चित्त को स्थिर करने का अभ्यास करना चाहिये। प्रारंभ में चित्त बहुत थोड़ी देर स्थिर होता है परन्तु निरन्तर अभ्यास ज़ारी रखने से अधिकाधिक समय के लिये स्थिर होने लगता और उस अमृत मय के चिन्तन में अधिकाधिक आनन्द अनुभव करने लगता है। निशाना बींधने वाले को सिवाय लक्ष्य के जिस प्रकार और कुछ भी नहीं दीखता, ध्यान करने वाले को भी करना चाहिये कि उसे भी सिवाय भगवान के किसी चीज का यहां तक कि अपने शरीर का भी ध्यान न रहे। ध्यान के लिये बैठने पर जब उपासक के मन में अन्य नाना प्रकार की चिन्तायें—चाहे कितनी भी आवश्यक हों—उपस्थित हों तो उन्हें यह कह कर हटा देना चाहिये कि दिन के बाकी २३ घण्टे इनके लिये बहुत हैं। जब जब चित्त किसी दूसरे विषय का चिन्तन करने लगे तो उसे शीघ्र ही उस से हटा कर फिर भगवद्दर्शन, भगवत्-स्मरण भगवत्स्तवन या भगवच्चिन्तन में लगाना चाहिये। ऐसे कुछ समय तक मन के साथ युद्ध करने पर शीघ्र सफलता प्राप्त होती मालूम होती है।

इस प्रकार प्रेम से भरपूर होकर तथा चित्त को एकाग्र करके सन्ध्या में बैठना चाहिये। संध्या के समय को कुछ भागों में बांटा जा सकता है। प्रारम्भ में अपने शब्दों में प्रार्थना

करते हुए उनसे प्रेम की भिक्षा माँगनी चाहिये फिर सन्ध्या के वाक्य जो आगे लिखे गये हैं अथवा मन्त्र पढ़ने चाहियें। सन्ध्या के वाक्यों के पीछे मन में एक मात्र भगवान् का ध्यान करते हुए, मन ही मन में प्राणायाम मन्त्र, गायत्री मन्त्र या शन्नो मित्रः शंवरुणः इत्यादि वाक्य या अन्य कोई ईश्वर स्तुति-परक वाक्य बोलते हुए प्राणायाम करना चाहिये। उसके पीछे भगवान् का जो नाम अपने को प्रिय हो उसका कुछ काल जाप करना चाहिये। और तदनन्तर कुछ ईश्वर स्तुति-परक गीत गाने चाहियें। इस प्रकार स्तुति, प्रार्थना, उपासना, जप, प्राणायाम आदि से भगवद् भजन होता है और मन भी स्थिर होता है।

ओ३म्

सन्ध्या संगीत

* सन्ध्या *

१–आचमन वाक्य

जल सम शीतल दिव्य प्रभु वह हम सब का कल्याण करे।
और हमारी मंगलमय अभिलाषाओं को पूर्ण करे।
मंगलमय हरि हम सब को ही परमानन्द प्रदान करे।
और हमारे ऊपर निशिदिन मंगल की ही वृष्टि करे॥

(दाहनो अञ्जलि में जल ले कर तीन वार आचमन करना चाहिये)

शुद्ध जल से स्नान अथवा मुख हाथ धो कर शुद्ध आसन बिछा कर शुद्ध हवा में बैठ कर सन्ध्या करना चाहिये। यदि किसी नदी का पवित्र किनारा मिल सके तो बहुत उत्तम है।

२—अंग स्पर्शन वाक्य

देव ! हमारी वाणी होवे अजय तेज से भरी हुई।
प्राण शक्ति भी हम सब के हो रोम रोम में रमी हुई।
आंखों में हे नाथ ! हमारी दृक्शक्ति यह बनी रहे।
श्रवणेन्द्रिय भी श्रवण शक्ति से सदा हमारी धनी रहे॥

नाभि स्थल पर रहने वाले अंगों को हम प्रबल करें।
और हृदय की निर्बलता को हम सब अपनी दूर करें।
कण्ठ हमारा सुस्वर होवे ऐसा ही हम यत्न करें।
बुद्धि जिस से बढ़े हमारी वैसे ही हम कार्य करें॥

अपनी बांहों में हम यश औ बल का ही संचार करें।
करतल अरु करपृष्ठों से हम पापों का संहार करें।

(उपरोक्त वाक्यों का उच्चारण करते हुये उन में निर्दिष्ट इन्द्रियों का क्रमशः स्पर्श करना चाहिये)

३—मार्जन वाक्य

अविनाशी जगदीश हमारी, सब की बुद्धि शुद्ध करे।
और हमारी दृक्शक्ति को ज्ञानरूप वह शुद्ध करे॥

प्रभु आनन्दस्वरूप हमारी वाणी के सब दोष हरे।
वही महाप्रभु सब के हृदयों में भी सुन्दर भाव भरे॥

सकल जगत का उत्पादक वह जननेन्द्रिय को शुद्ध करे।
महा तपस्वी पांवों में भी सहन शक्ति उद्बुद्ध करे॥
सत्यरूप जगदीश हमारी बुद्धि को सुपवित्र करे।
और वही खब्रह्म हमारे सब अङ्गों को शुद्ध करे॥

(उपरोक्त वाक्यों का उच्चारण करते हुये उन में निर्दिष्ट इन्द्रियों पर क्रमशः जल छिड़कना चाहिये)

४—प्राणायाम या जप वाक्य

स्वामी! तू ही है अविनाशी और सभी कुछ नश्वर है
और सभी हैं अज्ञानी, तू ज्ञानरूप परमेश्वर है
तुझ बिन दुखमय है सब तू ही परमानन्द कहाता है
महा प्रभु है जगत तुम्हारे आगे तुच्छ लखाता है॥

चर या अचर जगत का तू ही धाता और विधाता है
अपनी अतुल तपस्या से तू महातपी कहलाता है
सत्यरूप है तू ही जग में तेरी ही सब माया है
हजारों नामों से ऋषियों ने तेरा ही यश गाया है॥

इस वाक्य को मन ही मन में बोलते हुये और एक मात्र सर्वव्यापक भगवान का ध्यान करते हुये उसके किसी भी नाम का जो अपने को प्रिय हो निरन्तर मन में उच्चारण करते हुए प्राणायाम करना चाहिये। प्राणायाम करने के लिये पहले शिर को थोड़ा सा आगे झुका कर नासिका से धीरे धीरे सब वायु बाहर फेंकना चाहिये जिससे छाती बहुत कुछ खाली हो जाय, पेट पीछे पीठ से जाकर लग जाय, और मूलेन्द्रिय ऊपर को खिच जाय। जितना देर बाहर रोका जा सके सांस को रोकना चाहिये। फिर सिर को थोड़ा पीछे झुका कर धीरे २ वायु अन्दर लेते हुये छाती को भरना चाहिये यहां तक कि छाती के दवाव से पेट फूल कर आगे निकल आवे और छाती के आसपास की सब मांस पेशियां तन जावें, जितना देर अन्दर रुके रोकना चाहिये और फिर पूर्ववत सांस को बाहर फेंकना चाहिये और उपरोक्त प्रक्रिया को जितना देर शक्ति हो करना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम करने से शरीर में स्फूर्ति आती, पुफुस तथा कोष्ठगत अनेक आशयों के रोगों का भय जाता रहता है और चित्त की स्थिरता के लिये बड़ी सहायता मिलती है।

५—अघमर्षण वाक्य

ऋत या सत्य उसी परमेश्वर के तप से उत्पन्न हुआ।
प्रलयरूप अव्यक्त निशा का पीछे अविर्भाव हुआ॥

प्रकृतिरूप सागर यह उस के पीछे फिर विक्षुब्ध हुआ।
और काल की सत्ता का भी ज्ञान तभी से प्रकट हुआ॥

क्षुब्ध प्रकृति को वश में करके उसने यह संसार रचा।
द्यु,पृथिवी, आकाश स्वर्ग, रवि चन्द्र और दिन रात रचा॥
पूर्व युगों में जैसे था यह वैसा ही फिर जन्म दिया।
पापों से हम छूट सकें सब इसी लिये उत्पन्न किया॥

(इस वाक्य को पढ़ कर सब प्रकार की पाप वासनाओं से मुक्त होने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये। सब संसार इस लिये ही उत्पन्न किया गया है कि हम पाप वासनाओं से मुक्त हो सकें)

६—मनसा परिक्रमा वाक्य

पूर्वदिशा के अग्नि रूप से तुम स्वामी कहलाते हो।
सूरज रूपी निज बाणों से अन्धकार विनसाते हो॥
तुम से स्वामी अरु रक्षक को हम सब शीस झुकाते हैं।
और तुम्हारे बाणों को भी आदर भाव दिखाते हैं॥
जो हम से औ जिन से हम भी द्वेष भाव दिखलाते हैं।
देव! तुम्हारे न्यायालय में उन का न्याय कराते हैं॥

दक्षिण में तुम इन्द्र रूप से स्वामी बन कर रहते हो।
बुध-जन-रूपी निज बाणों से सब कुटिलों को हरते हो॥

तुम से स्वामी अरु रक्षक को हम सब सीस झुकाते हैं।
और तुम्हारे बाणों को भी आदर भाव दिखाते हैं॥
जो हम से औ जिन से हम भी द्वेष भाव दिखलाते हैं।
देव! तुम्हारे न्यायालय में उनका न्याय कराते हैं॥

पश्चिम के भी वरुण रूप से तुम स्वामी कहलाते हो।
सम्पत-रूपी-निज बाणों से सब दारिद्र्य मिटाते हो॥
तुम से स्वामी अरु रक्षक को हम सब सीस झुकाते हैं।
और तुम्हारे बाणों को भी आदर भाव दिखाते हैं।
जो हम से औ जिन से हम भी द्वेष भाव दिखलाते हैं॥
देव! तुम्हारे न्यायालय में उनका न्याय कराते हैं॥

उत्तरदिश के सोम रूप से तुम स्वामी कहलाते हो।
विद्युत-रूपी-निज-बाणों से नाना दुःख मिटाते हो॥
तुम से स्वामी अरु रक्षक को हम सब सीस झुकाते हैं।
और तुम्हारे बाणों को भी आदर भाव दिखाते हैं॥
जो हम से औ जिन से हम भी द्वेष भाव दिखलाते हैं।
देव! तुम्हारे न्यायालय में उनका न्याय कराते हैं॥

निम्न दिशा के विष्णु रूप से तुम स्वामी कहलाते हो।
ओषधि-रूपी-निज बाणों से नाना रोग मिटाते हो॥

तुम से स्वामी अरु रक्षक को हम सब सीस झुकाते हैं।
और तुम्हारे बाणों को भी आदर भाव दिखाते हैं॥
जो हम से औ जिन से हम भी द्वेष भाव दिखलाते हैं।
देव ! तुम्हारे न्यायालय में उन का न्याय कराते हैं॥

सब के स्वामी बन कर तुम ही ऊर्ध्वदिशा में रहते हो।
वर्षा रूपी निज बाणों से क्लेश सभी के हरते हो॥
तुम से स्वामी अरु रक्षक को हम सब सीस झुकाते हैं।
और तुम्हारे बाणों को भी आदर भाव दिखाते हैं॥
जो हम से अरु जिन से हम भी द्वेष भाव दिखलाते हैं।
देव ! तुम्हारे न्यायालय में उनका न्याय कराते हैं॥

(मन के द्वारा दिशाओं की परिक्रमा करते हुए उपरोक्त क्रम से एक २ दिशा का ध्यान करना चाहिये और भगवान् को ही उसका एक मात्र स्वामी और रक्षक कल्पना करना चाहिये)

७–उपस्थान या उपासना वाक्य

अन्धकार से परे तुम्हीं तो परम धाम कहलाते हो।
सूर्यों के भी सूर्य तुम्हीं हो ज्योतिर्मय दिखलाते हो॥
महादेव हो, सब देवों के ज्ञाता तुम को पाते हैं।
देव ! तुम्हारे चरणों पर हम प्रेमभाव से आते हैं॥

ज्ञानमयी गंगा के तुम हो आदि स्रोत कहाते हो।
ज्ञान सूर्य हो चहुंदिस अपनी किरणों को फैलाते हो॥
देव! तुम्हारी ये किरणें हम सब को राह दिखाती हैं।
और तुम्हारे श्री चरणों की ओर हमें ले जाती हैं॥

देवों में तुम सुन्दरतम और महाबली कहलाते हो।
मित्र, वरुण, औ अग्नि के भी सचालक कहलाते हो॥
द्यु, पृथवी, औ अन्तरिक्ष में चहुंदिस हो तुम व्याप रहे।
जड़ चेतन सब जग में ही तुम प्राण रूप हो बैठ रहे॥

मधुर प्रेमयुत वाणी से हम तुम को नाथ बुलाते हैं।
और तुम्हें अपने हृदयों के आसन पर बिठलाते हैं॥
चक्षु रूप हो तुम सब जग के सब को राह दिखाते हो।
देवजनों के हृदयों में तुम विमल रूप में आते हो॥
सौ वर्षों तक तुम को देखें, सौ वर्षों तक जी पावें।
सौ वर्षों तक तुम्हें सुनें, और नाम तुम्हारा ही गावें।
सौ वर्षों तक नहीं किसी के दीन कभी हम ही पावें।
सौ वर्षों के पीछे भी हम ध्यान तुम्हारा कर पावें॥

गुरुमन्त्र

सत-चित-आनन्द सब तुम्हारा वेदों ने बतलाया है।
जगत्पिता! यह रूप तुम्हारा सब के ही मन भाया है॥

इसी तुम्हारे विमल रुप का निसदिन हम सब ध्यान करें।
करके ध्यान तुम्हारा अपनी बुद्धि को हम शुद्ध करें॥

(इस वाक्य को पढ़ कर कुछ काल के लिये निरन्तर भगवान् का ही एक मात्र ध्यान करना चाहिये। भगवान् का वास्तविक स्वरूप निर्गुण और निराकार है परन्तु उपासक ध्यान करने के लिये उन का सगुण और साकार रुप कल्पित कर लेता है। द्यौ लोक जिस का सिर है सूर्य चन्द्र जिस की आंखे हैं सब दिशायें जिस की भुजायें हैं अन्तरिक्ष जिस का पेट है पृथ्वी जिस का पांव है और वायु जिस का श्वास है ऐसा विश्वरुप वा विराट्रूप भी भगवान् का ध्यान करने के लिये कल्पित कर लिया जाता है। उपासक कभी उसे जगदम्बा जगज्जननी समझ कर उसके साथ प्रेम से बातें करता है, कभी उसे जगत् का सम्राट् समझ कर अपने आप को उसके चरणों पर डाल देता है कभी प्रियतम समझ कर उससे अपना प्रेम प्रकट करता है कभी अशरणों का शरण, दीनों का नाथ और असहायों का एक मात्र सहायक समझ कर अपने आप को उसी के अर्पण कर देता है। अर्थात् उस समय उपासक भगवान् को किसी न किसी महा ऐश्वर्यशाली तेजोमय रुप में अपने सन्मुख खड़ा हुआ देखता है। कभी उसे हास्य रुपी अमृत वर्षा करते हुए देखता और कभी उस से अपने आप को प्रेमालाप करता पाता है तो कभी उसे क्रोध रुपी अग्नि वर्षा करते हुए देखता और अपने आप को उसके चरणों पर गिरा पाता है)

समर्पण वाक्य।

मङ्गलमय—प्रभु तुम हो तुम को हम सब सीस झुकाते हैं
परमानन्द-स्वरूप तुम्हीं को आदर भाव दिखाते हैं॥
मंगल-कर और सुख-कर हो तुम, शरण तुम्हारी आते हैं।
मंगल हो मंगलमय तुम को सादर सीस नवाते हैं॥

(दोनों हाथों को जोड़ कर सिर झुका कर कुछ देर भगवान् के सन्मुख नम्र होना चाहिये)

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!
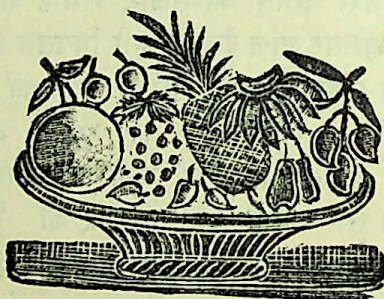
* भगवत्सम्बोधन *

सूना घर ।

तुम बिन मेरा घर है सूना ।

सुख सम्पत सों सोहित घर भो तुझ बिन लगत अलूना ॥

झांझ मृदङ्ग मुरलिया बाजे, बाजें कितने बाजे ।
तेरी मीठी तान बिना यह सब कुछ नाहीं साजे ॥

षडरस भोजन मैंने अपने घर में आज बनाया ।
तेरा रस ना उस में पाया मेरे मन ना भाया ॥

इस्त्री पुत्र पिता माता सब मुझ को मिलने आये ।
मुझ को क्या सुख हो जो प्यारे ! तुम ना घर पर आये ॥

नाच रङ्ग अरु खेल तमाशे नित नित घर पर होते ।
तुम क्यों रूठ रहे हो प्यारे ! क्यों ना शामिल होते ॥

प्रेम

पीऊं तेरा प्रेम पियाला।

पीकर तेरा प्रेम पियाला हो जाऊं मतवाला॥

प्रेम की वत्ती प्रेम का दीपक प्रेम की होवे ज्वाला।
मन मन्दिर में जगमग कर के हो जावे उजियाला॥

मेरे घर के अन्दर बहता होवे प्रेम का नाला।
जब जब प्यास लगे उस में से पी लूं भर कर प्याला॥

धो दे प्रेमवारि से अब तू मन मेरा मटियाला।
तेरे प्रेम का रङ्ग रङ्ग कर फिर हो जाऊं रङ्गियाला॥

प्रेम अश्रु से सिञ्चित प्रेम का बाग लगे हरियाला।
प्रेम प्रसून लगे हों उस में, उन की गूंथूं माला॥

भूल ही गया हूं

प्रीतम को अपने मिलना मैं भूल ही गया हूं॥

मैं दूर दूर जा कर सब को तो मिल के आया।
प्यारे को अपने मिलना मैं भूल ही गया हूं॥

दावत में बैठ मैंने पकवान खूब खाये।
अमृत का घूंट पीना पर भूल ही गया हूं॥

दरबारियों के आगे तो मैंने सिर झुकाया।
राजा को सिर झुकाना मैं भूल ही गया हूं ॥

चुन चुन अशर्फियों को धनवान् हो गया हूं।
हीरे का पर उठाना मैं भूल ही गया हूं ॥

घर जा के मैंने अपने सब को गले लगाया।
माता से अपनी मिलना पर भूल ही गया हूं ॥

सारे ही तीरथों पर मैं स्नान कर के आया।
अमृत की बहती गङ्गा को भूल ही गया हूं ॥

आतिथ्य

मैं शाम औ सवेरे घर पर तुझे बुलाऊं।
तेरी खुशी में सारा घर बार मैं सजाऊं ॥

तब बैठ द्वार पर मैं तेरी ही लौ लगाऊं।
आवे तो आगे बढ़ कर स्वागत तेरा मनाऊं ॥

चरणों की धूल ले कर तव भाल पै रमाऊं।
औ सिर झुका के तेरे चरणों पै लेट जाऊं ॥

ऐसे ही लेटे लेटे सुध बुध मैं भूल जाऊं।
तेरे ही ध्यान सागर में तब मैं डूब जाऊं ॥

आंखें खुलें तो तेरी भक्ति के गीत गाऊं।
प्रेमाश्रुओं से तेरे चरणों को तब धुलाऊं ॥

तब अपने दिल का आसन तेरे लिये बिछाऊं ।
उस पर बिठा के तुझको तब आरती मनाऊं ॥

दिन भर की मेहनत से जो कुछ कमा के लाऊं ।
तेरे ही आगे धर कर तब भोग मैं लगाऊं ॥

जाने लगो तो बाहर तक तुम को मैं छोड़ आऊं ।
जो कुछ बचा हो तुम से उसको ही आके खाऊं ॥

रंगवाले

रंग वाले ! देर क्या है मेरा चोला रंग दे ।
और सारे रंग धो कर रंग अपना रंग दे ॥

कितने ही रंगों से मैंने आज तक रगा इसे ।
पर वो सारे फीके निकले तू ही गूढ़ा रंग दे ॥

तूने रंगी यह ज़मी अरु आसमां जिस रंग से ।
उस में मेरा चोला भी ए ! रंगवाले रंग दे ॥

जिस तरफ मैं देखता हूं रंग तेरा दीखता ।
मैं ही बस बेरंग हूं तू मुझ को भी अब रंग दे ॥

मैं तो जानूंगा तभी तेरी ये रंगन्दाज़ियां ।
जितना धोऊं उतना चमके जब तू ऐसा रंग दे ॥

विरह

क्यों मुझे भूल गये हो पिया।

हार गई मैं प्रीतम तुम को लिख लिख के पतिया॥

पेके घर में रह के मैंने, जनम बिताय दिया।
अपने घर का दरशन तक भी, हाय नहीं है किया॥

प्रीतम का अपने अब तक भी, कबहुं न दरस किया।
जनम जनम की विरहिन हूं मैं, तड़पत हाय हिया॥

मैं मूरख थी तुम बिन मैंने, साज सिंगार किया।
अब तो नाथ! बिरह में तेरे सब सुख छोड़ दिया॥

तुम तो पिय! परदेस बसत हो, मुझ को छोड़ दिया।
मुझ को क्या सुख होवे इस से, जो धन धान दिया॥

बिरहिन रह कर जनम बिताया, धड़कत है छतिया।
मुझे अपने घर ले जाने को, कब आवोगे पिया॥

वहां नहीं यहां

सारे जहां में ढूंडा तुझ को कहीं न देखा।
आया, तो अपने घर में ही तुझ को बैठे देखा॥

दीपक जला के देखा तेरा पता न पाया।
आखिर तुझे अंधेरे में छुप के बैठे देखा॥

गर्दन उठा के ऊपर कितना ही तुझ को देखा।
जब सिर झुकाया तुझ को नीचे ही बैठे देखा॥

राजाओं के महल में मैं तुझ को ढूंडता था।
आखिर को भगवे चोले की ओट बैठे देखा॥

जब पण्डितों के घर जा तुझको मैं ढूंडता था।
तब तुझ को एक प्रेमी के घर में बैठे देखा॥

बाज़ार में खड़े हो कितना तुझे बुलाया।
चुप हो गया तो तुझको दिल में ही बैठे देखा॥

स्मरण

हे प्रेममय ! प्रभो तुम्हीं मेरे आधार हो।
तुम्हीं पिता, माता तुम्हीं घर और बार हो॥

खाऊं पीऊं संसार के सब काम मैं करूं।
मन में हरेक ही घड़ी तेरा विचार हो॥

दिन भर मैं काम काज में चाहे लगा रहूं।
दिल में तेरी ही याद मुझ को बार बार हो॥

दुनिया के काम काज से जो जो समय बचे।
तेरे ही ध्यान में मेरा सारा निसार हो॥

प्रीतम की याद होती है जैसे विदेश में।
वैसे ही तेरी याद मुझ को सौ सौ बार हो॥

घर में गमी हो या खुशी कोई त्यौहार हो।
मुख से तेरा ही धन्यवाद बार बार हो॥

दुनिया के सब सुख दुःख भी मुझ को न छू सकें।
ऐसा नशा तेरा मेरे मन पर सवार हो॥

जिस दिन तो एक बार भी तेरा न ध्यान हो
दिन भर मैं बठ के रोऊं तब जार जार हो॥

मलिन घर

उन से मैंने जब कहा "मेरी कुटी पर आइये।
विमल पद कमलों से मेरा 'मलिन घर' हरसाइये"॥

देख कर मेरी तरफ वे मन में तब हंसने लगे।
अरु चढ़ा कर त्योरियां मुझ से वे यों कहने लगे॥

"मलिन घर' में तेरे कोई भी नहीं शृङ्गार है।
पाप के ही पंक से सारा भरा घर बार है॥

दिन रात जिस घर में अंधेरा ही अन्धेरा छा रहा।
क्या उसी घर में मुझे नादान आज बुला रहा॥"

बात सुन कर शर्म से कुछ देर मैं चुप हो रहा।
हाथ दोनों जोड़ कर तब मैंने उन से यों कहा॥

"जब अन्धेरे में सभी डूबा हुआ संसार हो।
और चारों ओर छाया पाप का अधिकार हो॥

तब नाथ ! क्या भगवान भानु जगत में आते नहीं ?
उन के आते ही जगत के पाप मिट जाते नहीं ?"

कैसे आऊं हे महाराज !

तेरे घर के अन्दर आते मुझ को आती लाज॥

कीचड़ में न्हाने से अब तक मैं नहीं आया बाज।
पाप-पंक से सना हुआ है मेरा सारा साज॥

औरों ने हैं साज सजाये तव दर्शन के काज।
मेरे कोई साज नहीं है कैसे आऊं आज॥

जिन चरणों तक पहुंच न पाये बड़े २ ऋषिराज।
उन को कैसे आज बनाऊं अपने सिर का ताज॥

कोई भेंट नहीं मैं लाया तव चरणन के काज
प्रेमाश्रु की माला गूंथी कैसे लाऊं आज॥

तेरे घर तक पहुंच न पाया।

राह में सोते सोते मैंने सारा काल बिताया॥

इस्त्री पुत्र पिता माता जो कोई मिलने आया।
उस के संग बातों में मैंने सारा काल गंवाया॥

राह में सारे साज सजाये मैंने देखो माया।
उस ने हाय शराब पिला कर मुझ को नाच नचाया॥

माया के संग रहते मुझ को तेरा ध्यान न आया।
पुष्पाञ्जलि जो लाया था मैं उसको ही दे आया॥

आंख खुली तो देखा सूरज पश्चिम दिश में आया।
राह नहीं है सूझत चहुंदिस हाय अंधेरा छाया॥

अमृतोद्यान

अपना बाग दिखा दे माली।

नाच उठे मन मेरा उस को देख देख हरियाली॥

चहुंदिस छाई छैल छबीली उस की छवि निराली।
देख देख के आंखें मेरी हो जावें मतवाली॥

अमृत-रस से भरी हुई है इसकी नाली नाली।
प्यासा हूं मैं पानी का तू घूंट पिला दे माली॥

फल फूलों से भरी हुई है इसकी डाली डाली ।
कितने खाकर अमर हुए हैं फल इसके रसशाली ॥

औरों को तू फल फूलों को देता भर भर थाली ।
तेरे दर से रो रो कर क्या मैं जाऊंगा खाली ॥

चहुंदिस इस के बाड़ लगी है कैसी कांटों वाली ।
मेरे अन्दर आने को तू इसे हटा दे माली ॥

आंखों के आगे छाई हैं ये धुन्द काली काली ।
पल भर इसे हटा कर अपनी राह दिखादे माली ॥

अमृत की नदी

अमृत की यह देखो कैसी सुन्दर बहती है नदिया
उसको जग में फिर क्या भावे जिसनेइस का घूंट पिया ।
उसने अपने ताप नसाये जिसने इसमें स्नान किया
जो इसमें ही डूब गया उसने भवसागर पार किया ॥

कितने हाय अभागे इससे दूर दूर रह जाते हैं
कितने इसके तट तक आकर फिर भी हा फिर जाते हैं।
भागवन्त जो कोई इसका घूंट एक पी जाता है
हो मतवाला सा फिर इसकी धारा में बह जाता है ॥

बहते २ कभी २ वह डूब इसी में जाता है
अन्दर बाहर आगे पीछे अमृत से घिर जाता है ।

पल पल अमृत को ही पीता, अमृत को ही खाता है
अमृत में ही रहते २ अमृतमय हो जाता है ॥

जो इसमें ही डूब गये हैं वे तो मानो अमर हुए
छूट मौत के पंजे से वे सब दुखों से दूर हुए।
जो बाहर ही घूम रहे हैं वे तो मानो मरे हुए
कोई काल के मुख में कोई आंचल में हैं पड़े हुए ॥

जिस ओर मैंने देखा तुझ को ही बैठे देखा ।

मैंने सुना बगीचे में फूल खिल रहे हैं ।
देखा उधर तो तुझ को ही खिल खिलाते देखा ॥

कहते थे आज ठण्डी ठण्डी पवन चली है ।
देखा तो नभ में तुझ को ही मुसकराते देखा ॥

समझा था आसमां में बादल गरज रहे हैं ।
देखा तो कहकहा कर तुझ को ही हंसते देखा ॥

कहते थे शाख पर यह कोयल ही गारही है ।
देखा तो मीठी सुर से तुझ को ही गाते देखा ॥

समझा था सूर्य का ही यह तो उदय हुआ है ।
देखा तो तेरे मुख का ही तेज आते देखा ॥

कहते थे जंगलों में कोई नहीं है रहता ।
मैं ने वहां भी तुझ को चुप चाप बैठे देखा ॥
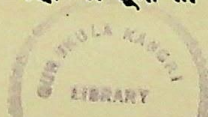
समझा था स्वर्ग की कोई अप्सरा है आई ।
देखा तो रूप धर कर तुझ को ही आते देखा ॥

विश्वास

तू ही मेरा है रखवार ।

मैंने अपनी नाव की तुम को सौंप दई पतवार ॥

डगमग करती अपनी नय्या को मैं यह पतवार ।
तेरे हाथों में ही दे कर सोया पैर पसार ॥

मैंने छोड़ दिया है चप्पू छोड़ दई पतवार ।
मेरी नाव का केवट है वह जग का सिरजन हार ॥

आंधी आवे वर्षा आवे चाहे मूसलधार ।
मुझ को किस का डर है मेरा तू है राखन हार ॥

उठ उठ करके लहरें आवें आवें विपद हज़ार ।
तेरे रहते मुझ को चिन्ता की क्या है दरकार ॥

मैंने अपनी नय्या लाकर डाल दई मझधार ।
मुझ को निश्चय है जाऊंगा भवसागर के पार ॥

तू ने कुछ भी हाय ! न देखा ।

नर नारी के खेल तमाशों को तो तू ने देखा ॥
नट नागर का खेल न देखा तो तूने क्या देखा ।

मात पिता अरु सास ससुर का प्रेम तो तूने देखा ॥
प्रीतम का गर प्रेम न देखा तो तू ने क्या देखा।

दुनिया भर के देश विदेशों को तो तूने देखा ॥
अपना प्यारा देश न देखा तो तूने क्या देखा।

सारे शहरों में फिर करके तूने सब कुछ देखा ॥
राजा का गर महल न देखा तो तूने क्या देखा।

सुन्दर सुन्दर रूपों को तो आंखें भर भर देखा।
सुन्दर से जो सुन्दरतम है उस को क्यों ना देखा ॥

नैय्या

इस को राखो राखनहार !

मेरी टूटी सी ये नैय्या आन पड़ी मंझधार।

पीकर मोह नशे का प्याला केवट है मतवार।
उसके हाथों से है कब की छूट गई पतवार ॥

भवसागर की लहरें रह रह इस पर करत प्रहार।
छल छिद्रों से भरी हुई है डूब रही मंझधार ॥

विषयों के ये ग्राह खड़े हैं, चहुंदिस गाल पसार।
इनके मुख से कौन बचावे, तू हो हाथ पसार ॥

मेरी इस नैय्या पर कोई डांड नहीं पतवार।
डगमग करती यों ही डोले सूझत आर न पार॥

विनय

इतनो नाथ विनय है मोरी।

चरणों से मत दूर हटाओ विनय करूं कर जोरी॥

राजसिंहासन से भी चाहे मुझ को नाथ गिराओ।
पर अपने इन चरणों पर से अब मत दूर हटाओ॥

राज-छत्र भी मेरे सिर से चाहे नाथ उठाओ।
पर अपने हाथों की छाया मुझ पर से न हटाओ॥

दीनानाथ! अनाथ बना कर मुझ से भीख मंगाओ।
पर नाथों के नाथ न मेरे सिर से हाथ उठाओ॥

पढ़ा लिखा भी मेरा सारा मुझ से नाथ भुलाओ।
ओ३म् नाम पर अपना प्यारा पल पल याद रखाओ॥

दुख के गहरे कूप में चाहे तुम मुझ को ठुकराओ।
अपनी प्रेम की डोरी को पर मुझ से नहीं छुडाओ॥

पारिवारिक प्रार्थना

हे दयामय आपका हम को सदा आधार हो।
आपके भक्तों से ही भर पूर ये परिवार हो॥

छोड़ देवें काम को अरु क्रोध को मद मोह को।
शुद्ध औ निर्मल हमारा सर्वदा आचार हो॥

प्रेम से ही मिल के सारे गीत गावें आपके।
दिल में बहता आपका हो प्रेम पारावार हो॥

जय पिता जय जय पिता हम जय तुम्हारी गा रहे।
रात दिन घर में हमारे आप की जयकार हो॥

धन धान घर में जो सभी कुछ आप का ही है दिया।
उसके लिये प्रभु आप को धनवाद सौ सौ वार हो॥

धन रहे या ना रहे उसकी नहीं परवाह हो।
आप की भक्ति से ही धनवान् यह परिवार हो॥

तुझ को किस की है परवाह।

तू तो वैसे ही करता है जैसे तेरी चाह॥

हम हैं तेरी दीन प्रजायें तू है शाहन्शाह।
तेरे दर पर कितना रोवें तुझे को क्या परवाह॥

तेरे दर पर मची हुई है दीन,जनों की आह।
तू सुन कर भी हंस देता है हो कर बेपरवाह॥

हम तो ठहरे दीन भिखारी तू ही है इक शाह।
और कहां पर जायेंगे हम छोड़ तेरी दरगाह॥

तू तो स्वामी है फिर तुझ को कौन बतावे राह।
आखिर तेरे सेवक ही हैं, कर ले जैसी चाह॥

नशा

ऐसा शराब का तू प्याला मुझे पिला दे।
जो फिर कभी न उतरे ऐसा नशा चढ़ा दे॥

पी कर जिसे न फिर मैं कुछ और न पीना चाहूं।
तू प्रेम रस का ऐसा प्याला मुझे पिला दे॥

उड़ उड़ के आसमां में मैं मस्त हो के गाऊं।
ऐसे तू देवताओं के पर मुझे लगा दे॥

छूते ही जिसके सारे दुख दर्द भूल जाऊं।
ऐसा तू हाथ मेरे सिर पर ज़रा फिरा दे॥

जिस को न धो सकें ये सारे समुद्र मिल कर।
ऐसा तू रंग कोई दिल पर मेरे चढ़ा दे॥

मुझ को न मौत भी ये आ कर कभी डरावे।
अमृत की ऐसी गंगा में तू मुझे निल्हादे॥

ज्योति

आ जा आ जा जोत जगाजा॥

आज मशाली बन कर मेरे घर का दीप जगा जा।
मन मन्दिर का यह अंधियारा सारा दूर भगा जा॥

बुझा हुआ है मेरा दीपक इस को आज जला जा।
अपनी उज्वल ज्योति से तू इसकी जोत जगा जा॥

आँच मेरे तू मन के आँचल में ऐसी सुलगा जा।
पाप पुञ्ज जो जमा हुआ है उसमें आग लगा जा॥

घिरी हुई हैं घोर घटायें, बिजली तू चमका जा।
राह नहीं है सूझत मुझ का आ कर राह दिखा जा॥

छाई हुई है रात अंधेरा सूरज बन कर आ जा
मेरा मन सोया है उस को आकर आज जगा जा।

सूरज तारों से भी बढ़ कर अपनी जोत दिखा जा।
सिंहासन यह बिछा हुआ है आ जा बन कर राजा।

"राम" नाम का जाप

रोम रोम में मेरे सारे रमा हुआ है राम।
रोम रोम से मेरे निकले राम राम का नाम॥

दिल की बीणा पर जब गाऊं, राम राम का नाम।
रोम रोम सब नाच उठे तब, सुन कर सुर अभिराम॥

प्रेम भाव से जब २ गाऊं राम राम जय राम।
राम नाम की मधुर गूंज से गूंज उठे चहुं धाम।

आगे पीछे दायें बांये चहुं दिस होवे राम।
राम को तज कर पल भर भी हो नहीं मुझे विश्राम ॥

शहर ग्राम में जहां कहीं हो मचा हुआ कुहराम।
मुझ को उस में भी सुन पावे राम राम का नाम ॥

पतिव्रता

मैं उन के चरणन को ध्याती ॥

उन को तज कर और किसी से नांही नेह लगाती ॥

उनकी सेवा में ही अपना, सारा दिवस लगाती।
उनके संग बातों में ही मैं सारी रात बिताती ॥

बैठ अकेले में जब उनसे, अपनी प्रीति दिखाती।
तब मैं अपने तन मन की भी, सारी सुध विसराती ॥

अपना तन, मन सब कुछ जब मैं, उनकी भेंट चढ़ाती।
उनके प्रेम को पाकर तब मैं, जीवन धन्य मनाती ॥

जड़ चेतन ये दुनिया सारी, जिनके यश को गाती।
उन को अपना प्रीतम पाकर अपने भाग सराहती ॥

मेरा साथी

ये कौन है जो मेरे पीछे ही पीछे आता।
जिस ओर को मैं जाता मेरे ही साथ जाता ॥

मैं दौड़ करके जङ्गल में छुप के बैठ जाता।
पर ये वहां भी मेरे पीछे ही पहुंच जाता॥

जब बैठ कर अकेला मैं ज़ारज़ार रोता।
ये ही वहां पे आ कर ढ़ाड़स मुझे बंधाता॥

जब जब मैं दुःख सागर के बीच डूब जाता।
पल भर में आ कहीं से ये ही मुझे बचाता॥

दुनिया के यार सारे जब मुझ को छोड़ जाते।
चुटकी लगा लगा कर ये ही मुझे हंसाता॥

औरों के ध्यान में मैं तो इस को भूल जाता।
पल भर भी छोड़ मुझ को पर ये कहीं न जाता॥

मैं हूं अजब तुम्हारा दास।

आठ पहर तुम पहरा देते, रह कर मेरे पास।
मैं सोता हूं पैर पसारे, फिर कैसा हूं दास॥

स्वामी के घर पल भर भी मैं, कबहुं न करौं निवास।
स्वामी मेरे घर पर रहते, मैं कैसा हूं दास॥

जब जब नाथ! बुलाता तुम को, दुःख में होय निरास।
सुनते ही तुम झट आ जाते, दौड़ के मेरे पास॥

मुझ को कोई चिन्ता नाहीं, भूख लगे या प्यास।
स्वामी निसदिन चिन्तित हैं निश्चिन्त पड़ा है दास॥

दुर्गम मार्ग

नाथ तुम्हारा राह कंटीला।

फिसल २ कर गिरते हैं हम, पग पग पर है यह रपटीला॥

मोह निशा का तम छा जाता, छन छन में है यह गहरीला।
उसमें भटक भटक जाते हैं, राह तुम्हारा है भटकीला॥

दोनों पासे विषयों का यह, बाग लगा है छैल छबीला।
इसमें अटक अटक जाते हैं, राह तुम्हारा है अटकीला॥

हार हार कर बैठ गये हैं, कितने लख टीले पर टीला।
राह तुम्हारा है अति दुर्गम, जाता कोई एक हठीला॥

काम क्रोध मद लोभ मोह के कांटों से है यह कंटकीला।
कैसे आगे पैर बढ़ावें नाथ बताओ कोई हीला॥

तुम बिन मेरा कौन सहाई

तुम सों बड़ कर मेरा हितकर, कोई भैन न भाई॥

दुनिया के सब भाई बन्धु स्वारथ के हैं भाई।
तुमको तज झूठे नातों में, मैंने प्रीत लगाई॥

इस्त्री पुत्र पिता माता सब राह में करत जुदाई।
मेरे सारे जीवन का है, नहीं एक सहाई॥

जब जब मेरी जीवन नौका, भंवरों में घिर आई।
तब तुमने ही आकर छन में, मेरी जान बचाई॥

घर घर जाकर औरों के मैं, देता हाय दुहाई।
राजा को तज रंकों से है, मैंने आस लगाई॥

उपासना

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

न जनं न धनं न कामिनीं, कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे, भवताद्भक्तिरहेतुकी त्वयि॥

नास्था धर्मे न वसुनिचये नापि कर्मोपभोगे
यद् भाव्यन्तद्भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरोधात्।
एतद् प्रार्थ्यं मम तु बहुलं जन्म जन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहमुपगता निश्चला भक्तिरस्तु॥

केचिद्वदन्ति धनहीन जनो जघन्यः
केचिद्वदन्ति गुणहीनजनो जघन्यः।
व्यासो वदत्यखिल वेद विशेषविज्ञः
नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः॥

प्रार्थना

स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये । ऋग्वेद । १ । १ । ९ ॥

तेजोसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ॥
बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोस्योजो मयि धेहि ॥
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोसि सहो मयि धेहि ॥
यजु । १९ । ९ ।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्यो अभयन्नः पशुभ्यः । यजु० । ३६ । २२ ।

यां मेधान्देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥
यजु । ४० ।

त्वन्नः सोम ! विश्वतो रक्षा राजन् ! अघायतः ।
न रिष्येत्त्वावतः सखा । ऋग्वेद । १-९१-८ ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये । यजु० । ४० ।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मा अमृतं गमय । शतपथ ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा । भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवान्स स्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
यजुर्वेद ।

स्तुति ।

बृहच्च तद्दिव्य मचिन्त्य रूपं
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्सु इहैव निहितं गुहायाम् ॥ मुण्डक ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽ त्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ श्वेताश्वतर ३

सर्वतः पाणिपादं तत सर्वतोऽक्षि शिरो मुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति । श्वेताश्वतर । ३

विश्वत श्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै र्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥
यजुर्वेद । १७ । १९ ।

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जित
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् । श्वेताश्वतर । ३

अपाणिपादो जवनो गृहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता। तमाहुरग्र्यं पुरुषं
महान्तम्। श्वेताश्वतर। ३।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ कठ। १।

भीषा अस्मात् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः।
भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः। तैत्तिरीय। ८।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।
कठ। १।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयग्निः।
तमेवभान्त मनुभान्ति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥
कठ। २।

यस्यान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युद्धचमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमान बभूव
यो अच्युतच्युत स जनास! इन्द्रः। ऋग्वेद २। १२। १
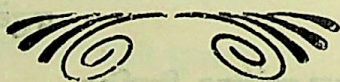
* आत्म सम्बोधन *

स्वदेश

चलो चलें अब अपने देश।

भटक रहा है तू परदेसी यह तो है परदेश॥

घूम घूम कर देख लिये हैं सारे देश विदेश।
अब तक तूने हाय न देखा अपना प्यारा देश॥

फिर फिर देख लिये दुनिया के सारे सुन्दर देश।
सुन्दर से भी सुन्दरतम है अपना प्यारा देश॥

सुख की आशा से तू दर दर घूम रहा दरवेश।
चलो चलें घर जहां नहीं है कोई दुख का लेश॥

थके हुए हैं देख देख के सब बाहर के देश।
घर जा कर के बैठेंगे अब जहां नहीं है क्लेश।

राही

राही तू क्यों अटक रहा।

राह विकट है घर न निकट है तू क्यों यों ही भटक रहा॥

रात अंधेरी सिर पर आई सूरज भी अब सटक रहा।
पीकर मोहनशे का प्याला हो मतवाला मटक रहा॥

तू दुनिया के झंझट—झाड़ो-झाड़ों को ही झटक रहा ।
गाफिल ! तेरे सिर पर काल कुल्हाड़ा लेकर लटक रहा ॥

तू विषयों के विषमय पंक में नाहक पांव पटक रहा ।
तू घर ना हीं पहुंच सकेगा डर मुझ को यह खटक रहा ॥

छलनी

छलनी सम है तेरो गात ।

अमृत भर भर कर तू डाले सारा निकसत जात ॥

चहुं दिस से है तुझ पर होती, अमृत की बरसात ।
हाय ! अभागे ! तेरे घट में बूंद नहीं ठहरात ॥

चुन चुन करके तूने मोती जमा किये दिन रात ।
इक इक करके नीचे से पर सारे गिरते जात ॥

तेरा स्वामी तुझ को देता कितनी बार सुगात ।
पर सब छिद्रों में से गिर कर मट्टी में मिल जात ॥

जब तक अपने छिद्रों को तू नो मूंदेगा भ्रात !
चाहे सारी गङ्गा पीले मन तेरा न अघात ॥

शूर

सोई शूर कहावे, जग में सोई शूर कहावे
जो विषयों के सारे दल को रण में जीत के आवे ।

काम क्रोध मद लोभ मोह के, लश्कर में घिर जावे
आखिर तक लड़ते लड़ते हो रण में प्राण गंवावे।

कामदेव के बाणों से भी ज़रा नहीं घबरावे
धीरज धर के खड़ा रहे अरु घमासान दिखलावे।

क्रोध की उठती ज्वालाओं की सारी आग बुझावे
प्रेम का शस्त्र उठा कर उस को, रण से मार भगावे।

मोहमयी इन जंजीरों से, अपनी देह छुड़ावे
ज्ञान के पैने शस्त्रों से जो, इन को काट गिरावे।

अपने मन के घोड़े को जो चाबुक मार सधावे
सधे हुए घोड़े पर चढ़ के, रण भूमि में आवे।

अपने गढ़ से सारे रिपुओं, को जो मार भगावे
अपने गढ़ का राजा बन कर, विजय ध्वजा फहरावे।

दिवाली

घर घर दीप जलाओ, अपने घर घर दीप जलाओ
घोर अमावस का अंधियारा सारा दूर भगाओ।

प्रेम का दीपक प्रेम की बत्ती प्रेम का तेल गिराओ
प्रेम की लाट लगा कर उस में प्रेम की जोत जगाओ।

कितना हाय ! अंधेरा छाया और न देर लगाओ
घर घर जगमग जगमग करते ज्ञान के दीप जलाओ ।

अपने अपने मन-मन्दिर में ऐसो जोत जगाओ
मोह निशा का जो तम छाया उस को दूर भगाओ ।

भगवत के चरणों पर आकर सारे सीस नवाओ
दिल के दीपक में उनके ही प्रेम की जोत जगाओ ।

मन मन्दिर में मैल जमी जो उस को झाड़ गिराओ
प्यारे ! आज दिवाली आई घर घर साज सजाओ ।

भूल न जाना आज दिवाली ऐसो आप मनाओ
अंधियारे में राह दिखावे ऐसे दीप जलाओ ।

किसान

रे तुम कैसो करत किसानी

धान के खेत तुम्हारे सारे सूक गये बिन पानी ॥

इस्त्री पुत्रों के संग तुमने सारी रात बितानी ।
चर गये खेत तुम्हारा सारा काम क्रोध के प्रानी ॥

घर की खुशियों में खुश रह कर खेत की याद भुलानी ।
जाकर देखो खेत में कितनी दुर्गुण-दूब उगानी ॥

सोये हो तुम पैर पसारे मोह की चादर तानो।
तुमको खबर नहीं है सारो खेती हाय सुकानी॥

खेत का कुछ भी ध्यान नहीं है करत नहीं निगरानो।
कहते हो हम करत किसानी, ये ही है हैरानो॥

देखो कुछ दूरी पर बहती, कैसी गंगा रानो।
जाओ जाओ नहर बनाओ, खींच के लाओ पानो॥

हरिद्वार की गाड़ी

रे जाग मुसाफिर! गाड़ी आई

पल भर में ही छूटेगी यह, क्यों सोया है भाई।

बैठ मुसाफिरखाने में है, जिसकी आस लगाई
गाफिल! वह हरिद्वार की गाड़ी स्टेशन पर है आई।

कोई जाग रहे हैं कोई जाते कदम बढ़ाई
कोई जाकर बैठ गये हैं ज्ञान का टिकट दिखाई।

जो गाड़ी के अन्दर जाकर सोयें पैर फैलाई
प्रेम की गंगा न्हावेंगे वे हरिद्वार को जाई।

गाड़ी ने तो चलने की भी आखिर कूक लगाई
चूक गया गर गाड़ी को फिर क्या होवे पछताई।

गाफ़िल !

गाफ़िल ! चमन में कितने दिन तू बिता के आया।
फूलों को छोड़ पर तु कांटे बटोर लाया ॥

तू खान में से जाकर पत्थर तो तोड़ लाया।
सोने की मोहरों को पर हाय छोड़ आया ॥

सिर पर तो आसमां से अमृत बरस रहा था।
फिर भी जमीं का पानी तू हाय पी के आया ॥

राजा तो तुझ से मिलने तेरे ही द्वार आया।
रँको से बात में पर तूने समय गंवाया ॥

चोर चुराते हैं धन तेरा

जो तेरे घर के ही अन्दर निस दिन करत बसेरा।

बाहर के चोरों पर तूने हाय ! बिठाया पहरा
जो घर के ही अन्दर रहते उन को क्यों न घेरा।

तेरे घर के अन्दर छाया कितना हाय अन्धेरा
उसमें ही छिप कर निस दिन ये हरते सर्वस तेरा॥

चोरों की चिंता में मूरख ! जागत करत सवेरा
चोर ही चोर छिपे हैं घर में उनको क्यों न हेरा।

सावधान

होश संभाल गाफिल ! होश संभाल रे
सिर पर खड़ा तेरे काल कराल रे ॥

मौत खड़ी सिर पर, ले तलवार रे
कौन सी विरियां तुझ पर कर दे वार रे।
क्यों सोया है गाफिल ! आंख उघाड़ रे ॥

कभी काम का होवे, हाय शिकार रे
कभी क्रोध की आग में, होवे ख़्वार रे।
चहुंदिस छाया काम, क्रोध का जाल रे ॥

हाय खरीदी दुनिया की जयदाद रे
जो पल भर में हो जाती बरबाद रे।
बेचा बदले में नरतन का लाल रे ॥

दुनिया है ये भीषण, पारावार रे
गाफिल जिसको करना चाहे पार रे।
विषयों के ग्राह खड़े, खोल के गाल रे ॥

ढोल खाली है

मैं कहता था मेरी प्यारी ये क्यारी खिलने वाली है
मगर देखा यहां पर तो खिजां ही आने वाली है।

सुना जब शोर इसका दूर से मैं दौड़ कर आया
मगर जब खोल कर देखा तो देखा ढोल खाली है।

मैं समझा था यहां पर कोई जलसा होने वाला है
मगर आकर यहां देखा कि मातम की तयारी है।

जिसे कहता था गोरी गोरी सूरत मोहिनी मूरत
उसे दिल खोल कर देखा तो देखा सारी काली है।

समझ कर फूलों की माला जिसे मैं दौड़ कर आया
मगर आकर जो देखा यह तो नागिन एक काली है।

ज़मीं को देख कर खाली मकां मैंने बना डाला
मगर पीछे ये देखा कि जमीं शमशान वाली है।

नशे में चूर होकर मैं तो आगे गाता जाता था
मगर पीछे जो देखा मौत की आती सवारी है।

कोई नहीं है जो मेरी हस्ती मिटा सके

ऐसी मैं आग हूं कि जो दिन रात जल रही
कोई नहीं ऐसा कि जो मुझको बुझा सके।

सूरज औ चांद से भी बढ़ के मैं चमक रहा
बादल नहीं है कोई जो मुझको छिपा सके।

अमृत का ऐसा घूंट है मैं ने पिया हुआ
कि क्या मज़ाल मौत मेरे पास आ सके।

आज़ाद हो के आसमां में मैं तो उड़ रहा
वह कौन है ज़मीं पे जो मुझ को गिरा सके।

शहजादा उनका हूं कि जो शाहों के शाह हैं
दुनिया में कौन है कि जो मुझको डरा सके।

दिवाली के दिये

है दिवाली आज अपने अपने दीप जगाइये।
इन दिवाली के दियों से जोत उनकी जलाइये॥

तेल मिलता है यहां पर आप भी ले जाइये।
बुझ रहे अपने दियों में इस को आज गिराइये॥

पहले अपने आप जल कर औरों को भी जलाइये।
और अपनी जोत को संसार में फैलाइये॥

बुझना तो हर एक ने है चाहे फिर बुझ जाइये।
पर जला औरों को अपनी जोत तो रख जाइये॥

फिर दिवाली आई है इसको न आप गंवाइये
जोत इसकी ले के अपनी आप जोत जगाइये।

क्यों नरतन का रतन गंवाया

कौड़ी के बदले में गाफिल ! तूने रतन लुटाया ॥

राजा के चरणों पर क्यों ना इस को भेंट चढ़ाया ।
इस के बदले में क्यों उन से ऊंचा पद ना पाया ॥

अमृत का यह भरा भराया प्याला तू ने पाया ।
एक घूंट भी नहीं पिया औ क्यों यों ही उलटाया ॥

जिसको निसदिन रगड़ रगड़ कर औरों ने चमकाया ।
क्यों विषयों के कीचड़ में ही उसको हाय ! गिराया ॥

आत्म ज्ञान

किन्ते धनेन किमु बन्धुभिस्ते
किन्ते दारैः पुत्रक ! यन्मरिष्यसि ।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं
पितामहास्ते क्व गता नु सर्वे ॥ व्यास ।

उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।कठ ।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे । कठ

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
गीता । २ ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः । गीता । २ ।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽय मक्लेद्योऽशोष्य एव च
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः । गीता । २ ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्ति धीरस्तत्र न मुह्यति । गीता । २ ।

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । कठ । २ ।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । कठ । २ ।

तमेवैकं जानथ आत्मानं अन्या वाचो विमुञ्चथ
अमृतस्यैष सेतुः । मुण्डक । २ ।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्या—
सितव्यः । आत्मनि खलु अरे ! दृष्टे श्रुते
मते विज्ञाते इदम् सर्वं विदितम् भवति ।
बृहदारण्यक ।

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वाऽत्मानं भावय नित्यम्
आत्मज्ञान विहीना मूढ़ास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥

शुद्धोस्मि बुद्धोऽस्मि निरञ्जनोस्मि ।
संसार माया परिवर्जितोऽस्मि ॥

नलिनीदलगत सलिलं तरलम्
तद्वज्जीवन मतिशय चपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तम्
लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥

अंगं गलितं पलितं मुण्डम्
दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डम्
तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम् ॥
इह संसारे भव दुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ॥

ईश सम्बोधन

उपासना

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम् तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां तमसः परस्तात् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥
श्वेत—६—७।

इहि चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः
। केन ।

एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनम्परम्
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते । कठ ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।
। कठ ।

ऋचोअक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद्विदुस्त इमे समासते
ऋग्वेद १—१६४—३९

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय ।
श्वेताश्वतर ।

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वै र्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।
श्वेताश्वतर ।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः
दिवीव चक्षुराततम् । ऋग्वेद । १।२।७।२० ।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शांतिः शाश्वती: नेतरेषाम् ॥ श्वेताश्वतर ॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति । श्वेताश्वतर ।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । ऋग्वेद

भिद्यते हृदयग्रन्थि श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे । मुण्डक ।

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् । मुण्डक । २ ।

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन । तैत्तिरीय । ९ ।

नमस्कार

यो देवो अग्नौ योऽप्सु विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥

श्वेताश्वतर

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वति दिव्यैः स्तवैः
वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैः गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः
यस्यान्तन्न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ।
नमोऽद्वैत तत्वाय मुक्तिप्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यम्
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेक जगत्कर्तृ हर्तृ प्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ।

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामः
वयं त्वां जगत् साक्षिरूप नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशम्
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ।

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोपि नमो नमस्ते ।
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥ गीता ।

ओ३म् तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु

इति शम् ।
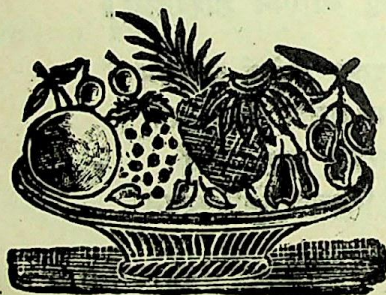
शुद्धि अशुद्धि पत्र

पृ० सं०	पं० सं०	अशुद्धि	शुद्धि
३	११	हैं	है
४	१२	हैं	हूँ
८	७	धं	धु
८	१८	सब	रूप
१४	५	तुमको मैं	तुम को
१७	१०	बठ	बैठ
१८	१८	प्रेमाश्र	प्रेमाश्रु
२१	१६	तुझ	तुझ
२२	१७	नर नारी के	नद नदियों के
२३	१७	हाथसार	हाथ पसार
२५	१४	तुझे को	तुझ को
२६	६	न पीना चाहूं	पीना चाहूं
२७	१२	रमा हुआ है	रमा हुआ हो
॥	१५	उठे	उठें
॥	१७	उठे	उठें
३०	१३	बड़	बढ़
॥	१७	नहीं	तू हो
३१	२	जान	आन
३२	१२	ययो	युयो
३४	११	मनु भान्ति	मनुभाति
३६	१५	गंगा	गंगा में
४७	५	इहि	इह
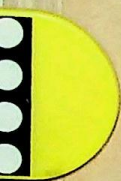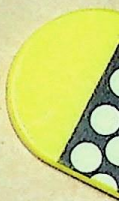
ग्रन्थकर्त्ता की अन्य पुस्तकें

प्राचीन भारत में स्वराज्य

आज कल भारत में स्वराज्य के लिये आन्दोलन चल रहा है, इस लिये इस बात की आवश्यकता है। कि स्वराज्य के असली स्वरूप को समझा जाय। प्राचीन काल के भारत में स्वराज्य का क्या रूप था यही दिखाना इस पुस्तक का उद्देश्य है। यदि आपने भारत को प्राचीन उन्नत अवस्था पर पहुंचाना है तो इस पुस्तक को पढ़िये। हिन्दी में यह अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। बड़े बड़े विद्वानों तथा समाचार पत्रों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। ऐसी उत्तम पुस्तक का मूल्य १॥) कुछ भी नहीं है।

पुस्तक मिलने का पता—

साहित्यपरिषद् गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी

हिन्दी गीता

वैदिक साहित्य में श्रीमद्भगवगीता का बहुत उच्च स्थान है किन्तु इसके संस्कृत भाषा में होने से साधारण लोग इस का रहस्य नहीं पा सकते। सर्व साधारण के लाभ के लिये यह हिंदी भावानुवाद है इस में शब्दानुवाद, के स्थान पर भावानुवाद पर विशेष ध्यान दिया गया है।

ग्रन्थ कर्ता से प्राप्त हो सकती हैं।

मूल्य ।=)

मास्टर लक्ष्मण के प्रबन्ध से स्टार प्रेस देहली में मुद्रित।